आन्तरिक अभ्यास के दो प्रारम्भिक * चक्र *

सन्त मत के आचार्य जिज्ञासुओं को आन्तरिक अभ्यास बहुधा दो में से किसी एक चक्र से शुरु कराते हैं. (१) हृदय चक्र जो बक्षस्थल के बाईं ओर निप्पल (nipple) के एक इंच अन्दर की तरफ़ है जहाँ पर धड़कन होती है.(यहाँ मनुष्य का रजोगुणी मन होता है). (२)आज्ञा चक्र (दोनों भौंहों के बीच में एक इन्च नीचे का स्थान. यह बात जिज्ञासु के मन की हालत पर निर्भर होती है. मन की तीन अवस्थायें होतीं है. (१) तमोगुणी मन (२) रजोगुणी मन, और (३) सतोगुणी मन . तमोगुणी मन सबसे निचली अवस्था है जिसमें मनुष्य की हैवानी (पाशविक) वृत्तियाँ बलवान होतीं हैं और ऐसे आदमी के लिए परमार्थ कोई मायने नहीं

रखता.तमोगुणी मन को सूफ़ियों में ' सिफली ' मन कहा है. यह 'नफ़्से अम्मारा 'का मुक़ाम है यांनी हैवानी (पाशविक) वृत्तियाँ यहीं से शुरु होती हैं. बीच का मन तमोगुणी मन कहलाता है जो सूफ़ियों का ' नफ़्से लववामा ' का मुक़ाम है यानी यहां पर अच्छी और बुरी वृत्तियाँ मिले जुले रूप में रहती हैँ. सतोगुणी मन सबसे ऊपर का मन है जिसे सूफ़ियों ने ' उलवी ' मन कहा है. यह ' नफ़्से मुत्तमय्यना ' का मुक़ाम है यानी इस स्थान पर सत वृत्तियाँ काम करती हैं. तमोगुणी मन वालों के लिये आन्तरिक अभ्यास नहीँ बताते बल्कि किसी कर्म पर डाल देते हैं, जैसे किसी नाम का मौखिक उच्चारण, माला का जाप आदि. यदि इस अभ्यास को करते रहें तो वे आलस्य, मैथुन तथा क्रोध आदिक तामसिक वृत्तियों से ऊपर उठ जायेंगे और आन्तरिक अभ्यास के अधिकारी बन जायेंगे. ऐसे लोगों के लिये सन्त मत नहीं है. सन्त मत का अभ्यास अधिकतर उन लोगों के लिए है जो रजोगुण की अवस्था में हैं या उससे ऊँचे उठकर सतोगुण की अवस्था पर आ गए हैं. तमोगुणी मन का स्थान टूंडी (नाभि) पर है और उलवी यानी सतोगुणी मन का स्थान आज्ञाचक्र पर है. हृदय चक्र इन दोनों के बीच में आता है. विचार हृदय से ही उठते हैं. तमोगुणी मन नीचे की ओर खींचता है और सतोगुणी मन ऊपर की ओर. दोनों में संघर्ष और खींचा -तानी बनी रहती है जिसे देवासुर संग्राम कहा गया है. जब तक मनुष्य इन्द्रिय -भोग और मन की इच्छाओं को पूरा करने में लिप्त रहता है तब तक उसका झुकाव नीचे की ओर रहता है और जब उनसे हटकर सतविचार और सतकरमों की ओर झुकता है तब उसकी चढ़ाई ऊपर की ओर होतीं है और वह ' सत ' पर आ जाता है. ब्रह्माण्डी मन तक सतोगुणी अवस्था रहती है और उससे ऊपर जाने पर मन नीचे रह जाता है और आत्मा शान्ति का अनुभव करने लगती है.

जो लोग चंचल स्वभाव के होते हैं उन्हें हृदय चक्र से और जो गंभीर (sober) स्वभाव के होते हैं उन्हें आज्ञा चक्र से अभ्यास शुरु कराते हैं. हृदय चक्र पर अभ्यास (प्रकाश का ध्यान) करने से मन शान्त होने लगता

है और सतोगुण की तरफ़ रुज़ू होने(झुकने) लगता है. सतोगुण पर पहुँच कर अभ्यासी गंभीर (sober).होने लगते हैं और अभ्यास करते - करते वे आज्ञाचक्र पर टिकने लगते हैं. उनकी सुरत नीचे के स्थानों से निकलकर ऊपर स्थित हो जाती है. पांचों दुश्मन (काम , क्रोध , लोभ , मोह और अहँकार) उनके क़ाबू में होते हैं. माला का सुमेर का दाना सबसे ऊँचे स्थान पर रहता है और सबको क़ाबू में किये रहता है. इसी तरह जब सुरत चढ़ कर ऊँचे स्थान यानी आज्ञा चक्र में स्थित हो जाती है तो नीचे के सभी चक्रों तथा उनसे उठने वाली वृत्तियों को क़ाबू किए रहती है.

मनुष्य के शरीर में दो शक्तियाँ काम कर रहीं हैं. एक का रुख (गति) बाहर को है और दूसरी का अन्दर को. मन का रुख बहिर्मुखी है और आत्मा का रुख अन्तर्मुखी. जब मन बाहर से मुड़कर अन्दर को चाल चलने लगता है और शुद्ध हो जाता है तब वह आत्मा में शामिल हो जाता है यानी बजाय आत्मा पर हुक़ूमत करने के वह मातहती (आधीनता) में आ जाता है और जब आत्मा के ऊपर से इच्छाओं के आवरण दूर हो जाते हैं तब वह शुद्ध होकर ईश्वर से मिल जाती है. यही मोक्ष है.

तमोगुणी मन मनुष्य को इंद्रियभोगों में फंसाता है और रजोगुणी मन वासनाओं में. इन दोनों को साधकर सतोगुणी मन में मिला दो और ऊपर की ओर चलो. जब तक मनुष्य दुनियादार रहता है तब तक रजोगुणी मन में व्यवहार करता है यानी रजोगुणी मन में ही तामसिक और सात्त्विक वृत्तियाँ मिलाए रखता है. परमार्थी अभ्यासी तमोगुणी अवस्था को पहले रजोगुणी अवस्था में मिलाता है और फिर वहाँ से भी उसे ऊपर खींच कर सतोगुणी मन में मिला देता है. इसके बाद यह तीनों मन आत्मा में मिल जाते हैं और आत्मा ईश्वर में लय हो जाती है. यहीं समाधी अवस्था है.

दुनियादारों को फिक्र इंद्रिय भोग की रहती है. वे ऊपर के दो मनों को (यानी सतोगुणी मन और रजोगुणी मन) को नीचे खेंच लेते हैं और गिरते चले जाते हैं यहां तक कि जानवर दशा को पहुँच जाते हैं. इसलिए अभ्यासी का यह कर्त्तव्य है कि कोशिश करके अपने मन को तम और रज से खेंच कर सत पर ले आवें, ईश्वर पर भरोसा रखे और संतों का संग करे तो आसानी से भवसागर से पार हो जाता है. जो लोग यह सोचकर बैठ जाते हैं कि ईश्वर कृपा करेगा तो सब ठीक हो जायेगा और वे भवसागर से पार हो जायेंगे, उनका यह सोचना भूल और आलस्य है. ईश्वर उनकी सहायता करता है जो स्वयँ पुरुषार्थ करते हैं और उसकी ओर चलते हैं. ख़ाली सोच लेने से और हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाने से कुछ नहीं होगा. तम और रज से निकलना अपना कर्त्तव्य है

और सत से ऊपर उठा कर ईश्वर में मिला देना, यह ईश्वर करता है. जब तक तम और रज में रहता है ईश्वर कृपा नहीं होती. सतोगुणी मन तक तो खुद कोशिश करके आना पड़ेगा . उसके बाद गुरु-कृपा और ईश्वर -कृपा होगी.

ईश्वर कृपा बहुत नाज़ुक़ है. यह विरोध (opposition) बरदाश्त नहीँ करती. ज़रा सा विरोध होने पर अन्दर को गुम हो जाती है. इसलिए जब तक मन इंद्रियों में फँसा रहता है, उसमें ख्वाहिशें (इच्छायें, वासनायें) रहती हैं और वह तरंगे उठाता रहता है, उस वक्त तक ईश्वर कृपा गुप्त रहती है. जब मन शान्त होकर सत पर आ जाता है तभी ईश्वर कृपा काम करती है और काम करती मालूम होतीं है. इसके पहले ईश्वर कृपा नहीं होती.

यह काम रुपये से नहीं होता. हाँ , गुरु उससे ख़र्च कराता है, खैरात कराता है. अच्छे कामों में रुपया लगवाता है जिससे रुपए से मोह टूटे. किन्तु यदि यह ख़्याल मौज़ूद है कि मैं खैरात कर रहा हूं तो फिर दुनिया में आना पड़ेगा क्योंकि इस मृत्युलोक में हर चीज़ का बदला है. इससे अच्छा यह है कि खैरात करो और कुछ न चाहो. सन्त लोग रुपया लेकर अपने इस्तेमाल में नहीं लाते, वे उसे खैरात कर देते हैं या किसी नेक काम में लगा देते हैं. यह उनकी बड़ी कृपा और बड़ा उपकार है क्योंकि इससे बन्धन भी टूट जाता है और उसके फल की भावना भी उत्पन्न नहीं होती, बदला लेने नहीं आना पड़ता. कितना उपकार किया उन्होंने. जब तक आप धर्म के काम नहीं करेंगे, बुराई को छोड़ कर नेकी पर नहीं आयेंगे, तम और रज से ऊपर उठ कर सत पर नहीं आवेंगे, तब तक गुरु कृपा नहीं होगी. जब तक आप सात्विक वृत्ति पर नहीं आवेंगे और धर्म पर नहीं चलेंगे, तब तक गुरु के प्यारे नहीं बनेंगें. गुरु के प्यारे हो जाने पर सतगुरु आपको नीचे से उठाकर आत्मा का अनुभव करा देंगे. ऐसा कहना ' कुफ्र का कलमा ' है लेकिन क्या करें, ईश्वर ने यहीं नियम बनाया है. हम अपना हाल सुनायें. बचपन में हमें कृष्ण भगवान से बड़ी मोहब्बत थी और उनकी याद में हम रोया करते थे. भगवान कृपा करके हमें स्वप्न में दर्शन दिया करते थे, भविष्य में होने वाली बातें बता दिया करते थे और एकाध बार उन्होंने इम्तिहान के सवाल भी बताये. जब से गुरुदेव की शरण में आये तब से सब ग़ायब हो गया, न दर्शन होते थे और न भविष्य की बातें मालुम होती थीं. हमने सोचा कि अपनी स्थिति से गिर गये. लेकिन नहीं, कृष्ण भगवान की ही कृपा से सन्त से मेला हुआ, सदगुरु मिले और उनकी कृपा हुई तो उन्होंने उठाकर भगवान से मिला दिया. रामायण में आया है :

" सातवैँ सुम मोहि मय जग देखा , मोते सन्त अधिक कर लेखा .

राम सिंधु धन सज्जन धीरा, चन्दन तरु हरि संत समीरा,

सब कर फल हरि भगति सुहाई, सो बिनु सन्त न काहू पाई ."

अच्छे और बुरे ख़्याल पिछले संस्कारों के कारण आते हैं. जब बुरे ख़्यालों का वेग होता है तब हम दुनियाँ की तरफ़ भागने लगते हैं और जब सदविचार उदय होते हैं तब हम ईश्वर की तरफ़ चलने लगते हैं. मनुष्य अपने पुरुषार्थ से सात्त्विक अवस्था में भले ही पहुँच जाय मगर सात्विक अवस्था से ऊपर आत्मा के स्थान पर बिना सन्त की कृपा के नहीं पहुँच सकता. अगर संतों के सतसंग से अपना सच्चा कल्याण चाहते हो तो पहले तम और रज से निकल कर सत पर आओ. तब सन्त कृपा करेंगे और उसके साथ ही साथ ईश्वर कृपा होगी.

जब कोई सन्त यह देखता है कि उसके जाने का समय आ गया है और उसके शिष्यों में से कोई अभी इस योग्य नहीं हुआ है जो उसके मिशन को आगे चलाये तब वह अपने परम प्रिय शिष्य को अपनी शक्ति से ऊपर खैंच कर आत्मा के दर्शन करा देता है. लेकिन जब तक शिष्य का मन पूरी तरह सत पर नहीं आ जाता तब तक उसकी स्थिति आत्मा में स्थायी (permanent) तौर पर नहीं हो पाती, वह नीचे गिर जाता है . लेकिन यह नहीं होता कि वह नीचे ही गिरा रहे. उस आत्म दर्शन की याद, उसका प्रेम और उसका आकर्षण, उसे नीचे नहीं रहने देता. धीरे -धीरे अभ्यास करके वह ऊँचा उठता जाता है, और एक दिन ऐसा आता है जब उसकी स्थिति आत्मा में स्थायी तौर पर हो जाती है.

जो होना है, वह तो होना ही है. उसे आप रोक नहीं सकते और न उसको रोकना आपके बश की बात है. इसी को तक़दीर कहते हैं. लेकिन उसके प्रभाव से बचना आपके हाथ में है. आगे के लिए तक़दीर का बनाना, आपके हाथ में है और इसके लिए जो यत्न किये जाते हैं उसी को तदबीर कहते हैं. अगर हज़ार कोशिश करने पर भी, और आपके हरचन्द रोकने पर भी, भोग के ख़्याल आने से नहीं रुकते तो समझ लीजिये कि पिछला संस्कार हैं. अगर मज़बूरी में भोगना पड़े तो भोगते समय उसके ख़्याल से ऊँचे उठ जाओ, अपनी सुरत (attention) को मालिक के चरणों में लगा दो. इसका नतीज़ा यह होगा कि उस भोग में आनन्द नहीं आयेगा और अगर आयेगा भी तो किसी क़दर कम. इस तरह अभ्यास करते -करते उस भोग से मन उपराम हो जायेगा और एक दिन ऐसा आयेगा कि उस भोग का ख़्याल भी नहीं उठेगा .

जो ईश्वर सत -चित -आनन्द है वही आत्मा है. अन्तर केवल इतना है कि आत्मा के साथ मन की गाँठ बंधी हुई है. मन से न्यारी हो जाय फिर तो वह ईश्वर ही है. गंगा का जल जब समुद्र में मिल जाता है तो फिर वह गंगाजल कहां रहा, वह तो समुद्र हो गया. जो शक्ति ईश्वर में है, वही शक्ति आत्मा में है. समुद्र में जब ज्वार आता है तब वह गंगा में घुस आता है. तब वह गंगा नहीं समुद्र है. सन्त लोग ईश्वर चोले में ईश्वर से भरपूर होते

है . जो कुछ वे कहते हैं वह ईश्वरीय वाक्य होता है. उनके मन में ग्रंथि नहीं होती . इसीलिये कहा है -- " सन्त वचन पलटे नहीं, पलट जाय ब्रह्मांड."

जो व्यक्ति राजसी वृत्ति के हैं, जिनका मन अभी चंचल अवस्था में है, कभी सत पर आ जाता है, कभी तम पर चला जाता है, उन्हें सन्तजन आन्तरिक अभ्यास हृदय के स्थान से आरम्भ कराते हैं. जब हृदय शान्त होगा, चंचलता दूर हो जायेगी तब ऊपर को चढ़ाई करेगा. अगर उसे आज्ञा चक्र से शुरु कराया जाय तो रज के ख़यालात नीचे को खींचेंगे. अगर अभ्यास ऊँचे स्थान से करेगा तो कशमकश (संघर्ष) ज़्यादा रहेगी. तरक्क़ी ज़ल्द नहीं होगी, हालत से गिर जायगा. जो व्यक्ति सात्त्विक वृत्ति के , गम्भीर और शान्त तबियत के हैं उन्हें आन्तरिक अभ्यास आज्ञा -चक्र से शुरु कराते हैं .

¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤

प्रवचन बक्सर १९-१-१९६९.